आगम निबंध माला। ग्रंथ १७

ॐ

आत्मशक्ति का विकास।

लेखक और प्रकाशक।

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मंडल, औंध [जि. सातारा.]

द्वितीय वार १०००

संवत १९८०, शक १८४५, सन १९२३.

मूल्य ।=) पांच आने

वैदिक धर्म।

वैदिक तत्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।

वैदिक धर्म के ओजस्वी विचार स्पष्ट रूपमें बतानेके लिये ही यह मासिक है। यदि आप इस मासिक के लेख पढेंगे, तो वैदिक मंत्रोंके गूढ और उच्च विचारोंके साथ आपका परिचय होगा।

योग साधन पर अनुभव के लेख इस मासिक में प्रकाशित होते हैं। इनको पढनेसे योग मार्गका ज्ञान सुगमतासे प्राप्त करके आप शारीरिक स्वास्थ्य, इंद्रिय संयम तथा चित्तकी प्रसन्नता का अनुभव लेते हुए अपनी शक्ति विकसित करनेके सुगम उपाय जान सकते हैं।

वार्षिक मूल्य ३॥) रु. है। शीघ्र ग्राहक बन जाइये।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा.)

आगम निबंध माला। ग्रंथ १७

आत्मशक्ति का विकास।

लेखक और प्रकाशक।

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

स्वाध्याय मंडल, औंध [जि. सातारा.]

द्वितीय वार १०००

—०❊०—

संवत १९८०, शक १८४५, सन १९२३.
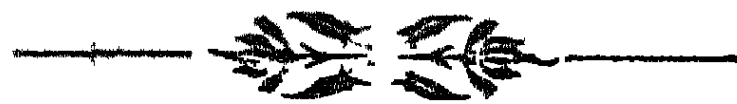
वैदिक धर्म का ध्येय।

अपनी शक्तियोंका विकास करना वैदिक धर्मका ध्येय है। इस विषयका प्रतिपादन करने-वाले मंत्र वेदमें सहस्रशः हैं, उनमें से अल्प मंत्रोंका और थोडेसे विषयोंका संग्रह इस प्रथम भागमें किया है। यदि यह संग्रह पाठकोंको पसंद हुआ तो क्रमशः इसी विषयके अन्य भाग प्रसिद्ध करने की इच्छा है।

औंध (जि. सातारा)
१ मार्गशीर्ष सं. १९८०

निवेदक
श्री. दा. सातवळेकर
स्वाध्याय मंडल।

ॐ

आत्मशक्तियोंका--विकास ।

अपनी शक्तियां कितनी हैं, और उन शक्तियोंका विकास किस रीतिसे करना चाहिये; इसका विचार मनुष्यही कर सकता है. इसीलिये मनुष्यका महत्व विशेष है। अर्थात जो मनुष्य अपनी शक्तियोंके विकासका प्रयत्न नहीं करते, तथा प्रतिदिनके कार्य से अपनी शक्तियां बढ रही हैं. या घट रही हैं; इसका कोई विचार नहीं करते, उनकी योग्यता विशेष नहीं हो सकती।

जो सौदागर अपने व्योपार व्यवहारका हिसाब नहीं देखता, और निश्चय पूर्वक लाभ प्राप्त करनेके उपाय नहीं सोचता, उसका दिवाला निकलनेमें देरी नहीं लगती। जो राजा अपने प्राप्त राज्य का उत्तम शासन नहीं करता, और अपने चतुरंगबलको बढानेका यत्न नहीं करता, उसकी शक्ति क्षीण होती है। इसी प्रकार हरएक व्यक्तिके विषयमें भी है। इस लिये प्रत्येक मनुष्यको अपनी शक्ति- योंका विचार करना चाहिये। शक्तियोंके विचारमें (१) अपनी सब शक्तियोंका निश्चित ज्ञान, (२) उनके विकास का मार्ग, (३) उनके पोषक नियमोंका ज्ञान और घातक कारणोंका विशेष ज्ञान, तथा (४) अपनी शक्तियोंकी स्वाधीनताका उपाय, इत्यादि विषयोंका संबंध आता है।

अपनी शक्तियोंका विचार करनेके पूर्व अपनी शक्तियोंका स्वरूप-विज्ञान होना अत्यावश्यक है। अपने अंदर दो प्रकार की शक्तियां हैं। (१) मुख्य शक्ति "**आत्मिक शक्ति**" नामसे प्रसिद्ध है, तथा (२) दूसरी शक्ति "**प्राकृतिक शक्ति**" है। जो प्राकृतिक शक्ति है, वह आत्मिक शक्तिके साथ रहनेसे सफल हो सकती है, अन्यथा नहीं। इनका ही वर्णन वैदिक सारस्वतमें निम्न शब्दों द्वारा होता है—

आत्मा	प्रकृति
ईश	अनीशा
अज	अजा
प्राण	रयी
सूर्य	चंद्र
पुरुष	प्रकृति
धन	ऋण.

इसमें मुख्य तत्व यह है कि. आत्माकी शक्ति प्रकृतीकी शक्तिके साथ मिलकर अपना प्रभाव बता रही है, इसलिये दोनों शक्तियां एक दूसरेकी साधक हैं और घातक नहीं हैं। शरीरमें देखिये कि. आत्माकी शक्ति प्रत्येक अवयव और इंद्रियमें जाकर कार्य कर रही है। यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि, अपने अंदर कितनी शक्ति है ? विचार करनेपर पता लग जायगा कि, यद्यपि देखनेमें शक्ति अत्यल्प है, तथापि विचार करनेपर उसके अपार

होनेका ज्ञान होता है। अनुभव के लिये गेहुंका एक दाना लीजिये और विचार कीजिये कि, उसमें कितनी शक्ति है? यदि यही एक गेहुंका दाना योग्य भूमिमें बोया जाय, और उत्तम खाद और जल की योजना की जाय, तो एक वर्षमें एक दानेसे २०० दाने हो जाते हैं, ये दोसौ दाने फिर भूमिमें डालनेसे प्रत्येकके दो दो सौ हरएक वार हो जाते हैं। इस प्रकार करते करते सात आठ सालके अंदर ही एक परार्ध की संख्या हो जाती है। अब देखिये कि, एक दानेमें कितनी अपार शक्ति है। इसी प्रकार प्रत्येक बीजमें है। एक बीजमें एक वृक्ष उत्पन्न करनेकी ही केवल शक्ति नहीं है, प्रत्युत उसके प्रत्येक बीजमें उतनी ही शक्ति होनेसे, अपार शक्तिका अनुभव एक बीजमें आता है। तात्पर्य इस प्रकार प्रत्येक बीजमें शक्ति की अपारता है। पता नहीं लग सकता कि, एक बीजमें कितनी शक्ति कूट कूट कर भरी है। इस रीतिसे विचार करनेपर पता लग जायगा कि जिसकी अगाध शक्तिसे ये बीज उत्पन्न हुए हैं, उसकी शक्ति कितनी अचिंत्य होगी !!!

अब अपने बीजरूप वीर्यका विचार कीजिये। वीर्यके एक बिंदुसे मनुष्यका शरीर बन जाता है, इतनी शक्ति उस एक बिंदुमें होती है। इस प्रकारके बिंदु एक समयके वीर्यमें सहस्रों होते हैं। वे सब फलीभूत नहीं होते, इस लिये एक वार एक या दो बालक उत्पन्न होते हैं। यदि सब वीर्यबिंदु फलीभूत होंगे, तो एक समय सहस्रों बालक उत्पन्न हो सकते हैं। परंतु विचार

के लिये हम एक समयके वीर्य बिंदुसे एक बालक उत्पन्न होना संभव है, इतना ही स्वीकार करते हैं। जो स्थिर वीर्य हैं, और ऋतुगामी होते हैं, उनके स्त्री पुरुष संबंधसे संतान निश्चयसे उत्पन्न होता है। परंतु जो स्थिर वीर्य नहीं होते, तथा गृहस्थाश्रमके ऋतुगामिरूप ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करते, अथवा जो स्त्रैण होते हैं, उनका वीर्य व्यर्थ चला जाता है। प्रतिवारके वीर्यपातसे यदि एक मनुष्य की बीज शक्ति अपने शरीरसे न्यून होती होगी, तो अनेक वार वीर्य पात होनेसे कितनी शक्तिका ह्रास होता होगा, इसकी कल्पना पाठक ही कर सकते हैं ! ! परंतु यह ह्रास इतना ही नहीं है, क्यों कि एकवार के वीर्य बिंदुसे केवल एक मनुष्यकी शक्तिका ही ह्रास नहीं होता, प्रत्युत उससे होनेवाले अनंत संतानोंका नाश होता है, क्योंकि वह सब शक्ति इस एक वीर्य बिंदुमें सुप्त अवस्थामें रहती ही है।

तात्पर्य जिस प्रकार वृक्षके एक बीजमें अनंत बीजोंकी शक्ति सुप्त होती है, उसी प्रकार मानवी वीर्यके एक बिंदुमें भावी अनंत संतानोंके बीज सुप्त रहते हैं। **इतनी अपार शक्ति वीर्यके एक बिंदुमें होती है।** यह शक्ति सुप्त होनेसे मनुष्यको पता नहीं लगता कि, अपनेमें इतनी शक्ति है, परंतु विचार की दृष्टिसे इस शक्तिका पता लगता है। ऋषि, मुनि, और योगियोंको इस शक्तिका ज्ञान हुआ था; इसी लिये उन्होंने ऋतुगामी होनेके उत्तम नियम शास्त्रोंमें लिखे हैं। तथा योगविद्यामें ऐसे प्रयोग सिद्ध किये हैं कि, जिन प्रयोगोंकी सिद्धि प्राप्त करनेपर मनुष्य स्त्रीपुरुष संबंधसे अपनी

शक्तिकी हानि न करता हुआ, उसी संबंधसे अपनी शक्तिको वढा सकता है। अर्थात जिस संबंधसे साधारण मनुष्यकी शक्ति क्षीण हो जाती है, उसी संबंधसे योगी अपनी शक्ति वढा सकता है। वीर्यके इंद्रियकी शक्तिकी स्वाधीनतासे इतनी शक्ति विकसित हो सकती है। तात्पर्य शक्तिका विकास करनेमें संयमका इतना महत्व है। कई लोग समझते हैं, कि शरीरकी शक्ति कम करना अर्थात शरीरको दुर्बल बनाना. संयमके लिये अत्यावश्यक है; परंतु वास्तविक बात यह नहीं है। जिसका मन और इंद्रियगण कमजोर होता है, उसीको संयम सिद्ध नहीं हो सकता। परंतु **जिसका मन बलवान और इंद्रियगण भी बलवान होता है उसीको संयम सुसाध्य होता है।** योगिराज श्रीकृष्ण भगवान का वर्णन देखिये, श्री शंकर का वर्णन देखिये, आपको पता लग जायगा कि इनके इंद्रिय बलवान थे, और मन भी बडा शक्तिशाली था, और इसी लिये अपनी इंद्रियशक्तियोंका संयम ये कर सकते थे। तात्पर्य यह कि: जिसका मन और इंद्रियगण रोगी है, उसको संयम साध्य नहीं हो सकता, और जिसका मन और इंद्रियगण नीरोग और बलवान है, वही संयमी हो सकता है।

इस विवरणसे पता लगा होगा कि, **मनुष्यके एक एक इंद्रियमें कितनी अमित शक्ति है और उस शक्तिकी स्वाधीनतासे किस प्रकार विकास होता है।** एक जननेंद्रियकी शक्ति जैसी अपार है, एक वीर्य बिंदुकी शक्ति जैसी महान है, उसी प्रकार प्रत्येक इंद्रियकी शक्ति भी अपार है। यद्यपि व्यापक

लोगोंनें इस शक्तिका अनुभव किया, वे अपनी शक्तिको बचाने लगे, और अंतमें मौन धारण करके " मुनि " बन गये । इससे यह चमत्कार हुआ कि मुनि जो शब्द बोलते थे, वही सत्य हो जाता था । परंतु आजकल शब्दोंकी वृष्टि करनेपर भी वह प्रभाव नहीं होता है । इसका कारण इस शक्तिके संयम और असंयममें ही है ।

कानमें श्रवण शक्ति है । इस शक्तिके कारण ही मनुष्य गुरुसे विद्याका ग्रहण कर सकता है । गुरुके मुखसे उच्चारित हुआ शब्द शिष्यके कानमें जाता है, और वहांसे हृदयतक पहुंच कर वहां अपना प्रभाव जमा देता है । इस प्रकार सुसंस्कार होनेपर मनुष्य योग्य और श्रेष्ठ बन जाता है, और कुसंस्कार होनेसे मनुष्य गिरने लगता है । इसका विचार करनेसे पता लग सकता है कि, कर्णेंद्रियमें कितनी आश्चर्य कारक शक्ति है ।

इसी प्रकार नासिकामें प्राणशक्ति जीवन दे रही है, नेत्रकी दर्शन शक्ति सब सृष्टिका दर्शन करा रही है, तथा अन्यान्य इंद्रियोंकी शक्तियां अन्यान्य रीतिसे प्रकट हो रही हैं। यदि पाठक विचार करेंगे, तो अपने शरीरके रोमरोममें विलक्षण शक्तिका कार्य उनको दिखाई देगा । वेदका उपदेश है कि, मनुष्यकी यह शक्ति विकसित हो, देखिये— (य. ६ । १५)

मनस्त आप्यायतां, वाक्त आप्यायतां प्राणस्त
आप्यायतां, चक्षुस्त आप्यायतां, श्रोत्रं त आप्यायताम् ॥

(१) तेरी मानस शक्ति की वृद्धि हो, (२) तेरी वक्तृत्व शक्ति विकसित हो, (३) तेरी प्राणशक्ति बढ जाय, (४)

तेरी दृष्टि की शक्ति उन्नत हो, (५) तेरी श्रवणशक्ति प्रभाव शाली हो, " और इसी प्रकार तेरी संपूर्ण शक्तियां विकसित हो जांय। यह वेद की सूचना है। इस मंत्रद्वारा वेद कह रहा है कि, हे मनुष्य! तू अपनी हरएक शक्तिका विचार कर और उस शक्तिके विकासके लिये उद्योग कर। वेद स्थान स्थानपर निश्चयसे कह रहा है कि इस प्रकारके उत्कृष्ट योगसे मानवी शक्तिका उत्कर्ष अवश्य हो जायगा।

इस लिये मनुष्यको यह इच्छा अपने अंदर धारण करनी चाहिये कि, मैं अपनी अनेक शक्तियोंका विकास करूंगा। अथवा कमसे कम इन में किसी एक शक्तिका तो ऐसा विकास करूंगा, कि जिसको " **परम विकास** " कहा जा सकता है। इस प्रकार इस एक शक्तिके विकाससे सबसे श्रेष्ठ बननेका प्रयत्न हरएकको करना चाहिये। **हरएक मनुष्यका यही धार्मिक कर्तव्य है कि, वह धर्मानुकूल आचरण करता हुआ, अपनी शक्तिका विकास करनेका प्रयत्न करे। दत्तचित्त होकर प्रयत्न करनेसे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है.** इसमें कोई शंका नहीं है।

इस कारण प्रत्येक वैदिक धर्मी मनुष्य अपनी शक्तिका विचार करे, उसके विकासके नियम जान कर उनका अनुष्ठान करके वह अपने प्रयत्नसे ही अपनी उन्नति सिद्ध करे. यही उक्त मंत्रका हेतु है। आशा है कि वैदिक धर्मी मनुष्य उक्त मंत्रका उद्देश्य ध्यानमें रखेंगे और अपने उदयके मार्गका पता लगायेंगे।

विवेक, भावना और अंतःप्रवृत्ति ।

मनुष्यका मनुष्यत्व बाह्य इंद्रियोंकी शक्तियोंकी अपेक्षा अंतः-करणकी वृत्तियोंपर अधिक अवलंबित है । मन की विवेक शक्ति, चित्तकी भावना और बुद्धिकी अंतःप्रवृत्ति जिस प्रकार होगी, उस प्रकारका मनुष्यत्व मनुष्यमें होगा। इस लिये वेदने कहा है कि—

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः
सह चित्तमेषाम् ॥ समानं मंत्रमभिमंत्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ॥
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४ ॥

ऋ. १०।१९१।

" आपका (मंत्र) विचार, मन, चित्त, हृदय और (आकूतिः) संकल्प समान हो । " अर्थात आपके विचार, मन, चित्त, हृदय और संकल्पसे विषमता दूर हो, और उसमें समानता आ जाय । विषमतासे अधोगति और समतासे उन्नति होती है । विषमता सर्वत्र हानिकारक होती है । शरीरके सप्त धातुओंमें विषमता होनेसे विविध प्रकारकी बीमारियां होतीं हैं, समाजमें जातियोंकी विषमता होनेसे सामाजिक अस्वस्थता बढ जाती है, राज्यशासनकी

विषमता होनेसे राज्यक्रांति हो जाती है, जलवायुकी विषमता हो जानेसे सब प्रकारका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, तात्पर्य सर्वत्र विषमतासे हानी और समतासे लाभ होते हैं।

मनुष्यकी विवेक शक्ति, चित्तकी भावना और बुद्धिकी अंतःवृत्ति यदि समतासे युक्त न हुई, और इसमें विषमता रही, तो मनुष्य यशस्वी नहीं हो सकता; इस लिये इस बातका थोडासा विचार करना चाहिये। मनकी विवेकशक्तिसे मनुष्य सारासार विचार कर लेता है, कौनसा अच्छा है और कौनसा बुरा है; इसका निश्चय विवेक शक्तिसे होता है। मनुष्यके चित्तमें भावनाकी प्रधानता होती है, किसी समय यह विवेक करता नहीं परंतु कहता है कि, मुझे यह अच्छा लगता है, इस चित्तकी भावना पर भी मनुष्यका मनुष्यत्व बहुतसा अवलंबित है, इससे भी बढकर बुद्धिका अंतर्ज्ञान है, जो स्वभावतः मनुष्यको प्राप्त होता है; तर्कनाके विनाही यह मनुष्यके अंदर विद्यमान रहता है, इस लिये इसको " सहज-प्रवृत्ति " भी कहते हैं। इन तीनोंसे मिलकर मनुष्यका मनुष्यत्व सिद्ध होता है। इस लिये हरएक मनुष्यको इन तीनोंकी परीक्षा करनी चाहिये और अपनेमें इनकी उन्नतिका विचार करना चाहिये।

मनकी तर्कना अथवा विवेक शक्ति मनुष्यमें है, इसीलिये इसको " **मनुष्य** " (मननात् मनुष्यः) कहते हैं। विवेक कर सकता है, इसलिये ही यह मनुष्य कहलाता है। अर्थात् विवेक हीन होनेपर मनुष्यको मनुष्य कहा नहीं जायगा। इसलिये विवेक

शक्तिको बढाना मनुष्यके लिये अत्यंत आवश्यक है। यह विवेक शक्ति " **न्यायशास्त्र** " के अभ्याससे बढ सकती है, इसी न्याय शास्त्रको " तर्क " भी कहते हैं। इस विषयमें गौतम का न्याय दर्शन सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है। इसके अध्ययनसे मनुष्य उत्तम और निर्दोष रीतिसे विवेक कर सकता है। इसी उन्नतिके लिये " **वैशेषिक दर्शन** " भी अच्छा है।

परंतु सदा सर्वदा मनुष्य इस तर्कशास्त्रके अनुकूल शुष्क तर्कना करता हुआ ही व्यवहार नहीं करता। विचार करके देखा जाय, तो पता लगेगा कि, मनुष्यके बहुतसे व्यवहार चित्तकी भावनासे ही होते रहते हैं। जैसा चित्तका भाव होता है, वैसा मनुष्य व्यवहार करता जाता है। इस चित्तको स्वाधीन करनेके लिये ही " **योग शास्त्र** " है। भगवान् पतंजलि महामुनिका योगदर्शन इन चित्तवृत्तियोंकी स्वाधीनताके लिये अत्युत्तम ग्रंथ है। इसके अध्ययनसे चित्तकी भावनाओंकी स्वाधीनता प्राप्त करनेकी रीति ज्ञात हो सकती है। मनुष्य भावनाओंके कारण बडे बडे परोपकारके कृत्य करता है। भावनाओंके कारण बडे बडे दान और धार्मिक कृत्य करता है। राजकीय और सामाजिक हलचलें भी भावनाओंके परिवर्तनके कारण होती हैं। भावनाओंके परिवर्तनके कारण धनी लोग भी सब लालच छोडकर फकीर बन जाते हैं, और कई दूसरे लोग बडे बडे व्यवसाय करके यशस्वी भी होते हैं। जहां भावना का स्थित्यंतर हुआ वहां तर्क कार्य नहीं करता, और सब कार्य भावनासे ही होते रहते हैं। भावना--प्रधान मनुष्यमें अत्यंत जोशकी

वडी फूर्ति रहती है, यह मनुष्य थोडे समयमें जितना कार्य कर सकता है, उतना तार्किक मनुष्य वहुत समयमें भी नहीं कर सकता। इसलिये भावनाको भी स्वाधीन करनेका यत्न करना चाहिये। " सांख्य दर्शन " का इस बातकी उन्नतिके लिये वडा उपयोग है।

विवेक और भावनासे भी और एक शक्ति मनुष्यमें जन्मसे प्राप्त होती है,वह बुद्धिकी अंतःप्रवृति है। यह मनुष्यमें " सह—ज " अर्थात् जन्मके साथ ही आती है। कई मनुष्य ऐसे होते हैं कि. उनके साथ आप वडी दलीलें कीजिये, वडी युक्तियां दीजिये अथवा उनकी भावनाओंको बडी चेतावनी दीजिये; परंतु वे सुनेंगे नहीं। क्यों कि उनकी बुद्धिकी साक्षी आपकी तर्कके साथ मिलती नहीं है। इसलिये मनुष्यके यशके साथ इसका भी संबंध है। कई मनुष्योंमें यह आंतरिक ज्ञान शक्ति अच्छी दशामें होती है और कईयोंमें वहुत मंद होती है। इस शक्तिके संवर्धनका उपाय " **ध्यान—योग** " है।

विवेक शक्ति, भावना शक्ति और आंतरिक प्रवृत्ति मिलकर मनुष्य है। मनुष्यका पुरुषार्थ अथवा उसका यश इनके प्रमाणसे ही होता है। कईयोंमें यह तर्कशक्ति वहुत वढी हुई होती है, यहां तक उनका तर्क चलता है कि, अंतमें वे नास्तिक ही बन जाते हैं!! दूसरे कई लोक ऐसे होते हैं, कि जिनमें तर्क शक्ति कम परंतु भावना शक्ति प्रवल होती है, यहां तक भावना प्रधान ये

मनुष्य होते हैं कि, अंतमें अंधविश्वासमें इनका परिणाम होता है!! तीसरे पुरुष ऐसे होते हैं कि, जिनमें न तो तर्कना रहती है और न भावना रहती है, परंतु " अंतःप्रवृत्ति " ही इतनी जबर दस्त होती है कि, वे किसीका सुनते नहीं और बडे दुराग्रहसे अपनी अंतःप्रवृत्तिके अनुसार ही कार्य करते जाते हैं। ये तीन ही प्रकारके पुरुष यदि दैववशात् यशस्वी हुए तो हुए, निश्चयसे पुरुषार्थके साथ होंगे ऐसा संभव नहीं। इसलिये **न्यायशास्त्र, योगशास्त्र और ध्यानयोग की सहायतासे उक्त तीनों शक्तियोंका ऐसा समविकास करना चाहिये कि, तीनों शक्तियां स्वाधीन रहें और निश्चयके साथ पुरुषार्थ करके मनुष्य यशको प्राप्त कर सके।**

साधारणतः विवेक शक्ति मस्तिष्कमें, भावना शक्ति हृदयमें और अंतःप्रवृत्ति पृष्ठ वंशके मूलाधार चक्रमें रहती है। आसनोंमें शीर्षासन, कपालासन, विपरीत करणी मुद्रा आदि करनेसे पूर्वोक्त शक्तियोंकी वृद्धि होने योग्य मज्जातंतुओंकी सबलता हो जाती है। इसके साथ साथ पूर्वोक्त शास्त्रोंका उत्तम अध्ययन करनेसे अपूर्व लाभ हो जाता है। अध्ययनके साथ अनुष्ठानकी भी अत्यंत आवश्यकता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

कई लोग ऐसे उतावले होते हैं, कि ठीक प्रकार सोचते ही नहीं। सब प्रमाणोंका यथायोग्य विचार करके करने योग्य कर्तव्य उत्तम रीतिसे करने चाहिये, तभी सिद्धि प्राप्त हो सकती है,

अन्यथा कैसी होगी ? योग्य प्रमाणोंकी सहाय्यतासे जो विवेक होगा, वह ठीक विवेक हो सकता है, परंतु दोष युक्त प्रमाण लेकर ही यदि कुछ न कुछ अनुमान अथवा सिद्धांत निश्चित किया जाय. तो उसके गलत होनेमें कोई भी शंका नहीं है। इस लिये अपने प्रमाणोंकी निर्दोषताका भी विचार अवश्य करना चाहिये। कई लोग ऐसे पक्षपाती और पूर्व-ग्रहसे दूषित होते हैं कि, वे विवेक करके सत्यासत्य निर्णय करनेके लिये सर्वथा अयोग्य ही होते हैं। पूर्वग्रहोंसे उनका मास्तिष्क इतना विगडा होता है कि, वे विवेक करनेमें असमर्थ हो जाते हैं। प्रायः मनुष्य अपनी जातिको अधिक पवित्र तथा अपने आपको अधिक समझदार समझता है। इसी प्रकार कई अन्य पूर्वग्रह होते हैं कि, जो मनुष्यको विवेक करनेके लिये अयोग्य बना देते हैं। इस लिये मनुष्यको उचित है कि, वह इन पूर्व दुराग्रहोंसे अपने आपको दूर रखे। यह सबसे कठिन बात है, परंतु इसके विना यथार्थ विचार होना असंभव है, और यथार्थ विचार करनेके विना अभ्युदय होना सर्वथा असंभव है। जो महात्मा लोग होते हैं, वे पूर्वग्रहोंको दूर फेंक देते हैं, इसी लिये वस्तुस्थितिको ठीक प्रकार देख सकते और उन्नतिका मार्ग ढूंढ सकते हैं। और अज्ञ जन पूर्वग्रह दूषित होते हैं, इसी लिये महात्माओंको प्रारंभमें अत्यंत कष्ट होते हैं; परंतु अंतमें उनकी ही सर्वत्र पूजा होती है, इस लिये प्रमाण, प्रमेय, वस्तुस्थिति आदिका यथायोग्य विचार करके निश्चित और निर्दोष अनुमान करनेका अभ्यास बढाना अत्यंत आवश्यक है। क्योंकि निर्दोष अनुमान

पर ही मनुष्यकी उन्नति अवलंबित है । तात्पर्य यह कि न्याय शास्त्रके अनुकूल अपने विवेकको सुसंस्कृत कीजिये ।

इसके पश्चात् चित्तकी भावनाकी शुद्धिका काम है । मनुष्यके अंदर भावनाकी शक्ति अतर्क्य है । यद्यपि भावनाके स्वरूपका निश्चय करना अत्यंत कठिन कार्य है, तथापि उसकी शक्ति अत्यंत विलक्षण है, इसमें मतभेद नहीं हो सकता । भावनाका यहां तक संबंध है कि, अच्छी भावना चित्तमें स्थिर रहनेसे शरीरकी नीरोगता, मनकी उल्हास वृत्ति और इंद्रियोंकी कार्यक्षमता सिद्ध होती है, और बुरी भावनासे इसके विपरीत परिणाम दिखाई देता है । यह अपनी भावनाकी शक्ति आप अपने अंदर तथा अपने मित्रोंके अंदर देखिये और अपनी भावनाको शुद्ध करनेकी तैयारी कीजिये । जिस समय अपनी भावनाके उत्तम होनेके विषयमें आपको संदेह हो, उस समय आप अपने आपको उसी परिस्थितिमें कल्पनासे ही रखिये कि, जो आपकी भावना फलीभूत होनेसे बननेवाली है । ऐसा करनेसे आपको ही पता लगेगा कि, अपनी भावना शुद्ध है वा नहीं । भावनाको शुद्ध करनेके लिये उसको अल्पसे अल्प शब्दोंमें व्यक्त करनेका यत्न कीजिये, और देखिये कि आपके तर्कसे वह अवस्था अच्छी है वा नहीं । क्या आप अपनी भावनाको सहस्रों लोगोंके सामने खुलंखुला कह सकते हैं ? यदि कह सकते हैं तो समझिये कि वह शुद्ध भावना है, अपने धार्मिक भावसे अपनी भावनाकी शुद्धता कीजिये । इस प्रकार जो परिशुद्ध भावना होगी,

उसका आचरणमें लानेमें कोई दोष नहीं। योग शास्त्रका जो आचार व्यवहार है, उसके अनुसार अपना आचरण करनेसे भावनाकी शुद्धि होती है। इस लिये इस रीतिसे इसकी पवित्रता संपादन करनी चाहिये।

अब रही अंतः प्रवृत्ति जो जन्मके साथ प्राप्त होती है। यह दूर होनी यद्यपि कठिन है, तथापि ध्यान योगके अभ्यासने इसकी पवित्रता हो जाती है। अपनी प्रवृत्तिको शुद्ध, पवित्र और मंगल बनानेका कार्य हरएकको करना चाहिये। यह बीज शक्ति इतनी प्रबल होती है कि, इसीसे सब लोग कार्य कर रहे हैं। कईयोंकी प्रवृत्ति घातपातकी ओर है और कईयोंकी परोपकारमें है। इस लिये एककी निंदा और दूसरेकी प्रशंसा हो जाती है। यदि मनुष्य विचार करेगा, तो उसको पता लग सकता है कि, अपनी प्रवृत्तिमें कौनसा दोष है। दोषका पता लगनेके पश्चात् उसको दूर करना आवश्यक है। पाहिले इसका विचार करना चाहिये कि, प्रवृत्ति आलस्यकी है, वा उद्यमकी है। ध्यान रखिये कि आलस्य ही बडा भारी रोग है, और उद्यमी जीवन स्वस्थावस्था है। इसलिये पाहिले अपने आपको उद्यमी बनाईये। जब प्रवृत्ति उद्यमी हो जायगी, तब उसकी और शुद्धता कीजिये। इसका रीति यह है कि, अच्छेसे अच्छे उद्यममें अपने आपको सदा रखिये। निरंतर दृढ निश्चय पूर्वक अपने आपको मंगल पुरुषार्थमें लगानेसे प्रवृत्तिकी परिशुद्धता हो जाती है।

" सुशिक्षण " से उन्नति और दोषयुक्त शिक्षणसे अवनती होती है। आपका आंख देख सकता है और कान सुन सकता है, यह सच है, परंतु आपका अशिक्षित आंख चित्रकारके आंखसे कितना नीचे है, और आपका कान गवईय्याके कानसे कितना पीछे है, यह विचारसे देखिये; इसी प्रकार अन्य इंद्रियोंके विषयमें है। इसलिये अपने आपको मन और हृदयकी सुशिक्षासे योग्य बनाइये। केवल मन शक्तिवाला हुआ तो भी ठीक नहीं और केवल हृदय ही अछा रहा तो भी ठीक नहीं है। इस विषयमें वेदका कथन स्पष्ट है, देखिये——

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ॥

अ. १०।२।२६

"मस्तक और हृदयको एक धागेसे सीना चाहिये।" सुशिक्षाका एक धागा है, उससे मस्तक और हृदयको सी दीजिये। मनकी विवेक शक्ति और हृदयकी भक्ति इस प्रकार एक मार्गसे चलने दें। इन दोनों का समाविकास करके अपनी परिस्थिति देखिये और उसको अच्छी प्रकार सुधार कर अपने आपको ऐसा उन्नत कीजिये कि लोग आपको आदर्श समझने लग जांय।

अपनी उन्नति करना आपका अधिकार ही है। जन्मही इस प्रकारके अभ्युदयके लिये है। पुरुषार्थ करनेसे ही जन्मका साफल्य होना है, इस लिये उठिये, और अपने साथियोंको जगाइये। आपके साथी विवेक, भावना और अंतःस्फुरण ये ही

हैं। इनको अपने योग्य बनाकर आगे बढ़िये और विजय प्राप्त कीजिये। युद्धमें स्थिर रह कर आगे बढ़ेंगे, तो ही विजय प्राप्त हो सकता है। आपको पता है कि, युधि-ष्ठिर का भाई ही विजय है अर्थात् जो (युधि) युद्धमें (ष्ठिर-स्थिर) स्थिर रहता हैं, पीछे नहीं हटता, उसीके पास विजय जय आता है। अपने यशकी यही कुंजी है। यह बात ठीक प्रकार ध्यानमें रखिये। तो विजय आपसे दूर नहीं होगा और आपको शीघ्रही यश मिलेगा।

आत्मानुशासन।

जगतमें शासन कई प्रकारके हैं । (१) सबसे ऊपर एक जगन्नियंता परमेश्वरका सर्वांगपूर्ण शासन है, जिसका उल्लेख वेदमें निम्न प्रकार आया है--

(१) ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ॥

य. ४० । १

(२) इंद्रो यातोऽवसितस्य राजा ॥ ऋ. १।३२।१५

(३) ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा ॥

ऋ. ८।६।४१

(४) एकराळस्य भुवनस्य राजसि ॥ ऋ. ८।३७।३

(१) इस जगतीमें जो पदार्थ मात्र हैं, उन सबमें ईश बसने योग्य है, (२) स्थावर जंगम का एक प्रभु राजा है, (३) सबका पूर्वज ज्ञानी ईश्वर स्वशक्तिसे सबका एक प्रभु है, (४) वह तू भुवनका एक राजा है। " इन मंत्रोंमें त्रिभुवनके एक सम्राट् का वर्णन है । इसीका शासन सर्वतोपरि है । इसीके आधीन सब रहते हैं । हमारे राजे महाराजे सम्राट्के आधीन हैं, ऐसे प्रभावशाली सम्राट् भी उस प्रभुके आधीन हैं । इस प्रभुका जो साम्राज्य शासन है, वह जीवित और जाग्रत है । इसके शासनमें सबको योग्य न्याय

मिलता है. "कर्मोंके अनुसार यथा योग्य फल वही देता है।" कोई भी इसकी शक्तिका अथवा शासनका निरादर नहीं कर सकता। इतनी इस प्रभुकी शक्ति अगाध है।

इसके जागतिक शासनमें "ऋत और सत्य" ये दो नियम कार्य कर रहे हैं। इनका उल्लंघन कोई कर नहीं सकता। इसका शासन ऐसा शांतिसे चल रहा है कि, इसके विरुद्ध कोई कभी जा नहीं सकता। देखिये यदि आपने बहुत खाया, तो आपको अजीर्ण हो जाता है, बालपनमें ब्रह्मचर्यका पालन न करनेपर तारुण्यमें कष्ट होते और आयुष्य क्षीण होता है. दूसरोंको कष्ट देनेपर मानसिक क्षोभ होकर अंतमें कष्ट देनेवालेका नाश होता है. इत्यादि फल प्रभुके शासनके प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। किसी किसी समय ये फल साक्षात नहीं दिखाई देते, परंतु सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर उनकी प्रत्यक्षता हो सकती है। इसलिये सभी साधुसंतों, ऋषिमुनियों और महात्माओंने इस शासनको सर्वतोपरि माना है।

इसके नीचे दूसरा शासन "राज-शासन" है। राष्ट्रमें जो राज्यशासन चलता है, उसके नियम साधारणतः पालन करने होते हैं। साधारणतः ऐसा इसलिये कहा है कि, जो नियम प्रजाजनोंकी उन्नतिके होंगे, वे ही पालन करने योग्य हैं. परंतु यदि कोई नियम अवनतिकारक निश्चित हुआ, तो उसको न पालना आवश्यक होता है। परमेश्वर शासनके नियम सनातन होते हैं, उनमें हेरफेरकी आवश्यकता नहीं होती, परंतु मानवी बुद्धि अल्प होनेके कारण इनके बनाये नियम परिस्थिती बदलते ही बदलने पडते हैं। अस्तु।

मनुष्य इस राज्यशासनसेभी साधारणतः बंधा है; चोरी करनेसे तथा अन्य गुन्हे करनेसे दंड होता है, इसलिये राज्यशासनके भयसे मनुष्य सदाचारमें रहता है, इस शासनका यही उपयोग है। जिस देशमें राज्यशासन ढीला होता है, वहांके लोगोंमें अपराध अधिक और जहांके शासक स्वकार्ये तत्पर रहते हैं, वहांकी जनतामें अपराधियोंकी संख्या न्यून होती है। इसलिये सुराज्यशासन बहुधा जनताका हित करनेमें सहायता करता है। परमेश्वरका शासन सर्वतोपरि है परंतु गुप्त है, राजाका शासन एकदेशी है परंतु प्रत्यक्ष है। परमेश्वरके शासनमें कभी अन्याय नहीं होता, परंतु मनुष्योंके शासनमें अनेक त्रुटियां होनेके कारण अनेक प्रकारका अन्याय होना संभवनीय है।

इसके नीचे जातिके भयसे, परिवारके डरसे, कुटुंबके अभिमानसे मनुष्य दुराचारमें प्रवृत्त नहीं होता, और पवित्र आचरण करनेका यत्न करता है। उक्त कोईभी शासन लीजिये उसमें एक बात है कि, " **दूसरेके भयसे अपना बचाव करना** । " परमेश्वरके भयसे पाप न करना, राजशासनके डरसे उपद्रव न करना, जातिकी भीतिसे निंदित कार्य न करना, इन सबमें बाहिरकी भीति है, जो मनुष्यको पापसे दूर रखती है। यद्यपि यह डर मनुष्यको पापसे बचाता है तथापि " **दूसरेके भयसे अपना बचाव होनेमें एक प्रकारकी अपनी कमजोरीही व्यक्त होती है** । " इस प्रकारकी कमजोरी जबतक रहेगी, तबतक मनुष्यमें सच्चा मानवपन प्रकाशित होना असंभव है। पाठक यहां पूछेंगे कि, क्या हम परमेश्वरसे भी

न डरें ? उत्तरमें निवेदन है कि " **वैदिक धर्ममें परमेश्वर कोई भयका पदार्थ नहीं है** "—

स नो बंधुर्जनिता स विधाता । य. ३२।१०

स नः पिता जानिता स उत बंधुः । अ. २।१।३

" वह ईश्वर हम सबोंका पिता, रक्षक, जनक, भाई मित्र आदि है । " इसलिये स्पष्ट है कि परमेश्वर मित्र होने. और सच्चा बंधु होनेसे उसके साथ वैसाही वर्ताव करना चाहिये । डरनेकी क्या जरूरत है ? हां जो दुराचारी हैं, वे डरते होंगे. क्योंकि वे बंधुत्वसे भ्रष्ट हुवे हैं । **वैदिक धर्मके उपदेशके अनुसार आचरण होनेपर परमेश्वरसे प्रेमका संबंध उत्पन्न होता है**, वहां फिर डरावे की बात नहीं रहती । अस्तु । जो धीरवीर पुरुष होते हैं, वे राज्यशासनमें सुधार करनेके समय निडर होकरही कार्य करते हैं । इसी प्रकार सर्वत्र निर्भयता ही प्रधानतया सदाचारके साथ रहती है । दुराचारके साथ भय होता है । इसलिये जो स्वयं सदाचारी होते हैं वे निर्भय रहते हैं, और दुराचारीही रातदिन डरते रहते हैं । अर्थात् " **सदाचारी बनकर निर्भय होना सबको उचित है ।** "

बाहिरके डरसे जो सदाचार मनुष्यके अंदर रहता है, वह बाहिरका डर हट जानेपर नहीं रह सकता । किसी नास्तिक विचार से परमेश्वरके अस्तित्वके विषयमें शंका उत्पन्न हुई, तो वह नास्तिक परमेश्वरसे डर कर पापसे बचने का यत्न नहीं करेगा; इसीप्रकार अन्यान्य डर हटनेपर उक्त केंद्रोंके विषयमें होनेवाले दुराचारोंसे बचना उस मनुष्यके लिये कठिन है, कि जो बाह्य डरके कारण सदा-

चारी रहता है । इसीलिये योगमें कहा होता है कि " **आत्मानुशासन से अपनी शुद्धता करनी चाहिये ।** " अपने ही स्वीकृत किये नियमोंसे अपनी पवित्रता शुद्धता और पूर्णता करनेका नाम " **आत्मानुशासन** " है, इसमें किसी वाहिरके डरवेका संबंध नहीं होता; परंतु " **आत्मिक-इच्छा-शक्ति** " सेही आत्मोन्नति करने का भाव इसमें मुख्य होता है; यही हेतु इसकी सर्वोत्कृष्टता होनेमें मुख्य है । नास्तिक भी आत्मानुशासनसे सदाचारी रह सकता है; अराजक भी आत्मानुशासनसे सत्कर्ममें प्रवृत्त हो सकता है, जातिके वंधन तोडनेवाला भी आत्मानुशासनसे बुरे कर्मोमें नहीं जाता । क्योंकि " **इसमें अपनाही शासन अपने ऊपर होता है ।** " इसीलिये इसकी उत्तमता है । इसलिये इस आत्मानुशासन के विषयमें थोडासा विवरण करना आवश्यक है । जो योगमार्ग में प्रवृत्त होना चहते हैं, अथवा जो अपना सुधार अन्य वातोंमें करना चाहते हैं' उनको उचित है कि, वे अपनाही शासन अपने ऊपर स्थापित करें।

सदाचारके नियम, उन्नतिके उपनियम, अभ्युदयके आचार, आपही निश्चित कीजिये, अथवा दूसरोंसे सीख लीजिये, किंवा ग्रंथोंसे निकाल लीजिये; और उन नियमोंके अनुसार चलनेका अत्यंत दृढ संकल्प-अटूट निश्चय कीजिये । यही सारांशरूपसे " **आत्मानुशासन** " है । दूसरेके वनाये नियम जवरदस्तीसे अथवा भयसे पालन किये जाते हैं; परंतु इस आत्मानुशासन के नियम, स्वयं वनाकर, अथवा स्वयं स्वीकार करके, किसीके डरको मनमें न

रखते हुए, पूर्ण निर्भयताके साथ, उत्तम रीतिसे पालन करने होते हैं। यही इसकी उत्तमता है।

"आत्मानुशासन" में अपने दृढ निश्चयकी आवश्यकता है, इसलिये इसमें उद्योगप्रयत्न, अत्यावश्यक है, क्यों कि—

आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः।

गीता. ६। ५

"स्वयं ही अपना भाई और स्वयं ही अपना शत्रु हरएक मनुष्य होता है।" जो अपनी परीक्षा स्वयं करके दृढ निश्चयसे परमपुरुषार्थ करता है, वह उद्यमी मनुष्य स्वयं ही अपना भाई है; परंतु जो आलसी उन्नतिके लिये कुछभी प्रयत्न नहीं करता, वह अपनाही शत्रु स्वयं बनता है। **जगत् में अज्ञानके कारण इतना नुकसान नहीं हो रहा है, जितना कि आलस्यके कारण हो रहा है।** प्रायः सौमें न्यानवे मनुष्य शरीरमें सामर्थ्य होनेपर भी पुरुषार्थका प्रयत्नही नहीं करते। ये आलसी अज्ञानीभी नहीं होते हैं, और उद्यम करनेके लिये सर्वथा असमर्थभी नहीं होते। परंतु सुस्त होते हैं, और बैठे रहते हैं। इसलिये उपनिषद् कहता है कि—

उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत॥ कठ० ६। १४

"उठो, जागो, और श्रेष्ठोंके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो"

और तत्पश्चात्—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः॥
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

य. ४०। २

" परम पुरुषार्थ करते हुए ही यहां सौ वर्ष जीनेकी महत्वाकांक्षा धारण करनी चाहिये। यही भाव तेरे अंदर रहे, इससे भिन्न कोई मार्ग नहीं है, पुरुषार्थसे नर का दोष नहीं लगता। " यह धार्मिक जीवन का वैदिक नियम है। जो इसका पालन नहीं करेगा, उसका उद्धार होनेकी आशा करना व्यर्थ है। इसलिये आमरणांत सत्कर्म करने का प्रतिज्ञा करके हरएक वैदिक धर्मी मनुष्यको आगे बढना चाहिये। परम पुरुषार्थ करके पीछेसे आनेवालोंका मार्ग सुकर करना चाहिये। यही " **उत्—योग का जीवन** " किंवा उत्कृष्ट योग का जीवन वैदिक धर्मके अनुकूल है।

नियम करनेपर भी कई लोग उसका पालन नहीं करते। यह सबसे मुख्य कारण अवनतिका है। मनुष्यकी अथवा राष्ट्रकी किसीभी बाह्य कारणसे अवनति नहीं हो सकती, जबतक वह अपने आपकी अवनती न करेगा। " **प्रत्येक मनुष्य जैसा कर्म करता है, वैसाही बनता है;** " यह वैदिक धर्मका अटल सिद्धांत है। इस-लिये स्वयं ऐसा कभी कार्य नहीं करना चाहिये, कि जिससे अपनी अधोगति होसके। स्वयं उत्तम नियम करके उसका पालन अवश्य-मेव करना चाहिये; इतनाही नहीं, परंतु जिस दिन उक्त नियमका पालन न होगा, उस दिन स्वयंही अपने आपको " **व्रतभंगका दंड** देना चाहिये और स्वयंही उसको भोगना चाहिये। ऐसा करनेसे नियममें रहनेका अभ्यास हो जाता है। दूसरेके डरसे जो मनुष्य बाधित होता हुआ नियम पालन करता है; वह दूसरेका निरीक्षण न होनेकी अवस्थामें इतना स्वैर वर्ताव करने लग जाता है कि,

उसकी कोई मर्यादाही नहीं रहती । इस लिये आप अपने अंदर देखिये, और यदि यह दोष हुआ, तो स्वयंही " **आत्म-दंड** से उसको दूर कीजिये । यदि आप स्वयं अपना सुधार करेंगे, तोही आपका सच्चा सुधार हो सकता है; अन्यथा कोई उपाय नहीं है ।

जगत्के अंदर छः अटल नियम हैं । (१) **उदय,** (२) **अस्तित्व,** (३) **संवर्धन,** (४) **परिपोष,** (५) **क्षीणता,** **और** (६) **नाश** । सब पदार्थोंको ये नियम लगते हैं । बीज उदयको प्राप्त होकर उसका अंकुर होता है, पश्चात् पौधा बनता है, वह बढने लगता है, पश्चात् वह फैलता है, फूलता और फलता है, कुछ समयके बाद क्षीण होने लगता है और अंतमें नष्ट हो जाता है । सब पदार्थोंकी यह अवस्था है । अभ्युदयके नियमोंके अनुसार वर्ताव करनेसे पहिली चार अवस्थायें दीर्घ कालतक रहती हैं, और अंतिम दो अवस्थायें अति दीर्घकालके पश्चात् आती हैं । " **उदय और नाश** " **के बीचके समयका नाम आयु है** । यह आयुष्यकी मर्यादा जितनी दीर्घ बनाई जा सकती है, उतनी बढानी चाहिये, तथा बीचकी दो अवस्थायें " **संवर्धन और परिपोष** " जहांतक हो सके वहांतक अति दीर्घकालतक व्यवस्थित रखना आवश्यक है । इसीलिये वैदिक धर्मके यम, नियम, ब्रह्मचर्य, आदि हैं । जो उनका पालन नियमसे करेंगे उनको लाभ हो सकता है । जो नियम पालन नहीं करेंगे, उनके लिये अंतिम दो अवस्थायें अति शीघ्र आ जायगीं ।

प्रत्येक मनुष्यको और इसीप्रकार प्रत्येक समाज और राष्ट्रको

अपने अभ्युदयके लिये, अपनी उन्नतिके लिये, अपनी बंधमुक्तता अर्थात् स्वतंत्रताके लिये, अपनी सुरक्षितताके लिये, तथा जातीयताके संरक्षण और संवर्धनके लिये यत्न करना चाहिये। इसी लिये अभ्युदय विषयक धर्मके सब नियम हैं। जो पालन नहीं करेंगे, उनका गिरना स्वाभाविक है, कोई उनको उठा नहीं सकता। इस लिये, प्रिय पाठको ! **उठिये, जागते रहिये, और सत्य नियमोंका पालन कीजिये, स्वयं ही अपनी उन्नति करनेका अटल निश्चय कीजिये और पवित्र नियमोंका पालन करके उन्नत हूजिये।** आपके लिये यही उत्तम है।

परमेश्वरके नियम ऐसे हैं कि, वे किसीकी पर्वाह नहीं करते, उसके नियम स्वयं सिद्ध हैं। यदि आप अनुकूल वर्ताव करेंगे तो आपकी उन्नति होगी, यदि नहीं करेंगे तो अधोगति निश्चित है। स्वच्छ वायुका सेवन करनेसे आरोग्य संवर्धन और तंग मकानमें रहनेसे आयुष्यका नाश अवश्य होगा; ब्रह्मचर्य पालन करनेसे पराक्रम करनेका उत्साह बढेगा और निर्वीर्य शरीर करनेसे सर्वत्र निरुत्साह दिखाई देगा; ये और इस प्रकारके सैंकडों नियम स्वयं सिद्ध हैं। इन नियमोंके न पालन होनेसे जो अपराध होता है, उसका प्रायश्चित्त भोगनाही पडता है। अग्निको हाथ लगाते ही हाथ जलता है, जितना यह प्रत्यक्ष है, उतनाही उक्त सत्य प्रत्यक्ष है। इस लिये अपनी जातिमें ऐसे उदाहरण देखिये कि जिन्होंनें सत्य धर्म नियमोंका पालन करके अपना अभ्युदय प्राप्त किया है तथा जिन्होंने धर्मनियमोंका धिक्कार करके यथेच्छ दुराचार करके अधोगति प्राप्त की है। दोनों

उदाहरण देखकर आप दुराचारसे बच जाइये. और उन्नतिकी दिशामें स्थिर रहकर आगे बढ जाइये। इस विषयमें दृढतापूर्वक स्वयं यत्न करना उचित है।

"**आत्मानुशासन**" में स्वाधीनता और स्वावलंबन की प्रधानता है। दूसरा कोई आपका हितकर्ता भी हो, तो जबतक आप उसपर अवलंबित रहेंगे तबतक आपको परवशही होना पडेगा. और सब प्रकारकी परवशता दुःखकारक है; इस लिये स्वावलंबन कीजिये. अपने बलसे ऊपर उठनका पुरुषार्थ कीजिये, स्वय उठकर दूसरोंको ऊपर उठाइये, **अपने उदयसे दूसरोंको प्रकाशित कीजिये।** सूर्य आपके सामने है, वह अपना उदय करके दूसरोंको प्रकाश देता है. यह जैसा उसका "**निजधर्म**" है वैसाही यह आपका निजधर्म बने। संभव है कि आप दूसरोंसे नियमोंका पालन करानेमें बडे कुशल होंगे. परंतु वह गौण है; आप अपने आपको नियमोंमें रख सकते है वा नहीं, इसका विचार कीजिये; आत्मोद्धारके लिये यही प्रधान बात है।

अपना उद्धार करनेकी प्रबल इच्छा सबसे पहिले मनमें दृढता के साथ धारण करनी चाहिये; प्रयत्न करके मैं अपना उद्धार अवश्यमेव करूंगा, ऐसा आत्मविश्वास चाहिये; उक्त प्रकार इच्छाशक्ति और आत्मविश्वास होनसे उन्नतिका पुरुषार्थ सुकर हो सकता है। इन दोनोंके न होनेसे ही नाना प्रकार के विघ्न प्रतिबंध करते हैं, और इनके होनेसे विघ्न आनेपर अपनी शक्ति बढ जाती है।

जगत् के प्रारंभमें एक आत्मा था, उसने कहा कि मैं एक हूं

अब मैं बहुत हो जाउंगा; इस इच्छाशक्तिसे वह बढ गया और इतना फैला कि वह इस विश्वसे भी बढ गया । देखिये—

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्, नान्यत् किंचन मिषत् । स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥ ऐ. उ. १ । १

सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ॥ २ ॥

तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति ॥ ६ ॥ छां. उ. ६।२।३

"प्रारंभमें आत्मा एक था, दूसरा हिलनेवाला कुछभी नहीं था । उस आत्माने इच्छा की कि मैं ब   हो जाऊं, वह बहुत बन गया, बढ गया ।" यह उपनिषदका उपदेश आत्मिक इच्छाशक्तिका बल बता रहा है । आत्माके अंदर ऐसी शक्ति है कि, उस प्रबल इच्छाशक्तिसे जो कहा जाय, योग्य कालमें बन जाता है । इसलिये इस आत्मिक इच्छाशक्तिका प्रभाव देखना चाहिये । आप जगत्में देखिये कि, यह इच्छा शक्ति कैसा विलक्षण कार्य कर रही है, और अपने अंदर की इच्छाशक्ति प्रबल बनाइये, **जिस समय संशय रहित इच्छाशक्ति प्रबल हो जाती है, उसी समय वह कार्यकर्त्री होती है** । संशयही अपनी शक्तिका घातक है, दृढ विश्वास अपना बल बढाता है । इसलिये अपने अंदर संशयरहित इच्छाशक्ति बढाइये । और दृढनिश्चयसे अपने प्रयत्नकी पराकाष्ठा करते हुए अपने उद्धारका पुरुषार्थ कीजिये ।

मनुष्यके संपूर्ण पुरुषार्थ उसकी इच्छा शक्तिपर निर्भर हैं । इसलिये अभ्युदयकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको संदेह रहित प्रबल इच्छाशक्ति अपने अंदर बढानी चाहिये । अन्यथा धर्मका पालन

होना असंभव है। और अगर प्रबल इच्छाशक्ति बढानेके लिये पहिले अपनी तर्कशक्तिकी सहायता लीजिये। तर्कसे सोच विचार करके निश्चय कर लीजिये कि, यह कार्य करना आवश्यक है। अपने तर्क द्वारा पहले संदेह मिटा दीजिये। जहां अपनेही तर्कसे कार्य न चलता हो, वहां आप जिसको प्रमाण पुरुष मानते हैं, उसके उपदेशके अनुसार कार्य करनेका मनका पक्का निश्चय कीजिये। वह कार्य अङ्गीकार करके जिन्होंने उच्च अवस्था प्राप्त की है, उनके चरित्र ध्यानमें लाकर निश्चय कीजिये कि आपभी वैसेही अच्छे बन जांयगे। इतना होनेके पश्चात् आपके मार्गमें संशयके कारण विघ्न नहीं होंगे। जब इस प्रकार पक्का विश्वास बन जायगा, तब स्वयंही नियम बनाकर उसका पालन कीजिये, और पालनमें गलती हुई, तो आपही अपने आपको योग्य दंड लीजिये। इस प्रकार करनेसे आपका उत्कर्ष हरएक बातमें हो सकता है।

उदाहरण के लिये प्रातःकाल उठनेके विषयमें है पहिले देखिये कि यह अच्छा है वा नहीं। यह देखिये कि जो प्रातःकाल उठते हैं, उपासना करते हैं, उनकी वृत्ति कैसी शांत रहती है। इस प्रकार विचार करके प्रातःकाल उठनेका पक्का निश्चय कीजिये। यही बात अन्य सब उन्नतिके विषयमें समझ लीजिये। इस प्रकार हरएक उन्नतिके नियम पालनमें आपको दत्तचित्त होना उचित है। यह न समझिये कि, आपको यूंही उन्नति होगी। यदि आप दृढनिश्चयसे प्रयत्न करेंगे, तोही हो सकती है, अन्यथा नहीं होगी। इसलिये

जितना प्रयत्न दृढ निष्ठाके साथ होगा, उतना आपके लिये लाभ होगा।

यहां कई पूछ सकते हैं, कि "**आत्मानुशासन**" किस रीतिसे अथवा किस युक्तिसे किया जाय। उत्तरमें निवेदन है कि "**अपनी इच्छाशक्ति की प्रेरणा**" से ही यह कार्य होगा; अन्य कोई युक्ति नहीं है। जगत्में इतने लोग निचली अवस्थामें हैं, इसका कारण यह नहीं है कि उनको मानवी उन्नतिके नियमों के विषयमें अज्ञान है। उनको ज्ञान है परंतु उनको इच्छाशक्तिकी कमजोरी इतनी है कि वे कुछ प्रयत्न करते ही नहीं। कौन नहीं जानता कि उपासनासे मनकी शांति प्राप्त होती है, परंतु कितने लोग योग्य रीतिसे उपासना कर रहे हैं? तात्पर्य यह है कि, आप अपनी इच्छा शक्तिको प्रबल बनाइये; अन्य फालतु कार्योंमें अपने चित्तको जाने न दें, और अपनी उन्नतिके कार्योंमें दत्तचित्त होकर निष्ठासे कार्य कीजिये। यही एक उन्नतिका मार्ग है। "**अभ्यास**" अर्थात दृढ निश्चय के साथ सतत प्रयत्न करना और "**वैराग्य**" अर्थात् अन्य कार्योंकी ओर न जाना, एकही अपने उद्देश्यकी सफलताके लिये परम पुरुषार्थ करना, यही अभ्युदयका एक मार्ग है। यही नियम आपको सर्वत्र उपयोगी प्रतीत होगा।—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। योग द. १। १२.

"अभ्यास और वैराग्यसे मनका निरोध होता है।" यह

महामुनि पतंजलिका कथन है, भगवद्गीतामेंभी श्रीकृष्णचंद्रजीने अर्जुनको यही उपदेश दिया है। यह न केवल मनोनिग्रहमें सत्य है, परंतु सब अन्य कार्योंको सिद्धि मिलने के लिये भी यही नियम बडा उपयोगी है। "**अभ्यास**" करनेसे कार्यसिद्धि होती है, यहां अभ्यासका अर्थ दृढ निश्चयसे और योग्य रीतिसे सिद्धि मिलने तक प्रयत्न करना है, एकबारके प्रयत्नसे सफलता और सुफलता न हुई तो पुनः पुनः प्रयत्न करनेसे सफलता होती है। "**वैराग्य**" का अर्थ है अन्य बातोंकी ओर ध्यान न देना, अन्य विषयोंसे अलिप्त रहना, जो कार्य सिद्ध करना है उसीमें दत्तचित्त होना और उसके सिवाय अन्य सब कार्योंके विषयमें उदासीन रहना। उदाहरणके लिये लीजिये कि, किसीको वेदका अध्ययन करना है; तो इसके साथक अंगोंके समेत वेदके अध्ययनमें पूर्ण प्रीति रखकर इससे भिन्न जो अन्य अध्ययन हैं, उनके विषयमें उदासीन रहनेका नाम वैराग्य है। विचार करनेपर पता लग सकता है कि, इन दो नियमोंसे सब प्रकारकी सिद्धि अति शीघ्रही प्राप्त हो सकती है।

साधारण मनुष्य परिस्थितिका गुलाम बनकर रहता है, परंतु पुरुषार्थी मनुष्य परिस्थितिको दूर करके अपने अभ्युदयका मार्ग निकाल लेता है। पुरुषार्थ करनेवालेके सामने जो विघ्न आते हैं, वे उसकी शक्ति वढानेके हेतु बनते हैं। सुस्त मनुष्यके लिये विघ्नोंका भय होता है। अभ्यास-वैराग्य-संपन्न मनुष्यके लिये ऐसा कोई विघ्न नहीं है कि, जो उसको अपनी इष्ट सिद्धिसे दूर रख सके। इसलिये इसपर विश्वास रखते हुए आप अपने उद्देश्यका निश्चय

कीजिये, और पूर्वोक्त रीतिसे इष्ट अवस्थातक अपनी उन्नति सिद्ध कीजिये।

न श्वः श्वमुपासीत। को हि मनुष्यस्य
श्वो वेद॥ शत. ब्रा. २।१।३।९

"कल करूंगा, कल करूंगा, ऐसा न कहिये, कौन जानता है कि कलकी बात क्या है।" इसलिये शुभकार्य विशेषतः अपने अभ्युदयक कार्य, कलपर छोडना पाप है। जो अच्छा कार्य होता है, उसको शीघ्रही प्रारंभ करना चाहिये। आजही कार्य प्रारंभ करनेकी तैयारी, जो कार्य करना है उसको ध्यानपूर्वक ख्यालसे करनेका गुण, व्यवस्थाके साथ कर्तव्य करनेका स्वभाव, कोई कार्य अपूर्ण न रखनेका उत्साह, कर्तव्य निश्चित करनेपर कभी सुस्ती न करनेका सद्गुण, उद्यमशीलता, साहसके साथ बडा प्रयत्न करनेकी हिम्मत, धैर्यसे आगे बढनेकी निर्भयता, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक बल, और पराक्रम करके अपना यश बढानेका उत्साह जिस पुरुषमें होगा, वह कभी अवनत नहीं रह सकता, तथा जिस राष्ट्रमें ये गुण उच्च अवस्थामें होंगे, उस राष्ट्रको कोई भी दबा नहीं सकता।

"आत्मानुशासन" से अपनी उन्नति सिद्ध करनेवाला उद्यमी और संयमी पुरुष प्रतिदिन अपनी उन्नति करता रहता है। आप यदि देखेंगे तो आपको पता लग जायगा कि, सिद्धियां उसके

पास दौडती हुई आती हैं। उसके पास न्यूनता नहीं रहती। वह कभी चिडचिडा नहीं रहता, आप उसको सदा हास्य वदन ही देखेंगे। वह चातुर्यसे अपने कर्तव्य पालन करता है, फुर्ती और उद्यम उसके स्वभाव गुण हैं। सुस्ती और आलस्य उसके पास नहीं रह सकते। वह अपनी शक्तियोंको स्वाधीन रखता है, मनका संयम करता है, इंद्रियोंका दमन करता है, नियमित व्यायामसे अपना शरीर नीरोग रखता है, नित्य नवीन ज्ञान प्राप्त करके उसको अपने जीवनमें ढालता है, उसका रहना सहना, कार्य करना और विश्राम लेना सब नियमपूर्वक और व्यवस्थासे होते रहते हैं, वह नियत समयमें नियत कार्य करता है और नियत कार्यके लिये मुहूर्तका निश्चय पहिलेही करता है, इसलिये किसी कार्य करनेके समय उसको गडबड अथवा अस्वस्थता नहीं होती। कर्तव्यके विषयमें तथा कार्य करनेके मार्गोंके विषयमें उसके मनमें संदेहवृत्ति नहीं होती, परंतु निश्चितता होती है। इसलिये वह निडर होकर कार्य करता है और यशको प्राप्त करता है। लोग समझते हैं कि उसमें कोई अलौकिक शक्ति है, परंतु वैसी कोई बात नहीं होती। जैसी शक्तियां अन्यामें होती हैं वैसी ही उसमें होती है। भेद इतनाही है कि वह उनका यथायोग्य रीतिसे उपयोग करता है और दूसरे सुस्त हैं।

इस प्रकार " **आत्मानुशासन** " का महत्व है। इस जगत के अंदर जो पुरुष अथवा जो स्त्री विशिष्ट बनी है, उसने इन नियमोंके

पालनसेही यश प्राप्त किया है। यह न समझिये कि उनके अंदरही कोई ऐसा खास दैवी शक्ति थी और वह शक्ति आपके अंदर नहीं है। यदि शक्तियां अलग अलग करके गिनीं जांय, तो आपके अंदरभी उतनी ही शक्तियां होंगी, कि जितनी उनमें थीं अथवा हैं। परंतु उन्होंने पुरुषार्थ प्रयत्नसे आत्मानुशासनकी रीतिके अनुसार प्रयत्न करके अपना अभ्युदय किया और आप जहांके वहांही खडे हैं!!! यह चमत्कार किसी बाह्य कारणसे नहीं हुआ है, परंतु आपके " **निश्चय अथवा अनिश्चय** " के कारण ही यह बात ऐसी बनी है। " **आपका भविष्य बनाना या विगाडना पूर्णतया आपके आधीन है।** " इसलिये जो पाहिले हुआ सो हुआ, आजही निश्चय कीजिये और अपनी उन्नतिके लिये आजसेही योग्य नियमोंके पालन करनेका पवित्र कार्य शुरू कीजिये।

(१) मैं कैसा था? (२) मैं इस समय कैसा हूं? (३) ऐसा ही चलता रहा तो मेरा क्या बनेगा? (४) मेरी किस रीतिसे शीघ्र उन्नति हो सकती है? (५) मेरी अवस्थामें जो थे उन्होंने किस मार्गसे उन्नति प्राप्त की? (६) अपनी उन्नति के लिये आज ही मैं क्या कर सकता हूं? इत्यादि बातोंका विचार करके आजका कार्य आजही कीजिये और भविष्यके लिये अभ्युदयके योग्य नियम करके उनका पालन करके यशस्वी बन जाइये।

सद्गुणोंकी धारणा ।

यम और नियमोंका अभ्यास करनेसे मनुष्यका जीवन अधिक पवित्र, अधिक श्रेष्ठ और अधिक आदर्शभूत होता है । परंतु यह अभ्यास केवल " **अभ्यास** " समझकर करना नहीं चाहिये, प्रत्युत उन गुणोंको अपने जीवन के अंदर ढालना चाहिये । ऐसा दीखना चाहिये कि, इसका जीवन यम नियम रूप ही बन गया है । तात्पर्य यह है कि, वैसा अपना निज " **स्व–भाव** " ही बनना चाहिये । श्रेष्ठ और उच्च गुणोंसे परिपूर्ण स्वभाव बनाना ही यहां मुख्य है, दिखावेसे अथवा प्रयत्नसेही केवल कार्य नहीं चल सकता । अब विचार करना है कि, यह स्वभाव किस प्रकार बनाया जा सकता है ।

" **गुण** " अर्थात् जो सद्गुण हैं, उनका मनसे ध्यान करना, पहिला काम है, जब अपने मनसे उन गुणोंकी श्रेष्ठता निःसंदेह श्रेष्ठ सिद्ध हो जाय, तब उनके अनुकूल " **कर्म** " करना आवश्यक है । जैसे मनमें गुण धारण किये थे, और जिनकी श्रेष्ठता मनके द्वारा निश्चित हुई थी, उनको कर्म करनेके समय उपयोग में लाना चाहिये । इस प्रकार जब गुण और कर्म की, विचार और आचार की, मन और कर्मेंद्रियोंकी एकरूप वृत्ति बन जायगी, तब वह भावना " **स्वभाव** " में परिणत होती है । इसीप्रकार स्वभाव

बन जाता है, जैसा जिसका स्वभाव होता है, वैसाही वह होता है। इसलिये स्वभाव बनानेका महत्व है।

प्रयत्न करनेसे ही स्वभाव बनता है, बडे परिश्रमसे बननेवाला यह भाव है। बहुत निग्रह करनेपर भी परीक्षाका समय प्राप्त होनेपर ज्ञानेंद्रियां, कर्मेंद्रियां, मन तथा अन्य अवयव धोखा देते हैं, इसका कारण इतनाही है कि, जैसा बनना चाहिये था वैसा स्वभाव बना नहीं है। विश्वामित्रने बडी तपस्या की, बहुत ही मनका संयम किया; परंतु परीक्षाका समय प्राप्त होनेपर पता लगा कि भोगवासना शेष रही है, और ब्राह्मण्यका शम दम अभीतक स्वभावमें उतरा नहीं। योगसाधनमें इस " **स्व-भाव** " के बनानेका अत्यंत महत्व है। बाहिरके दिखावेका यहां काम नहीं है, परंतु सच्ची "**आत्म-परीक्षा**" का ही यहां संबंध है। यम नियमोंको स्वभावमें ढालने के विषयमें जो अनुभव की बातें हैं, उनकाही इस लेख में थोडासा विचार करना है। यदि आपको अपना स्वभाव बनाना है तो आपको विशेष रीतिसेही प्रयत्न करना चाहिये। पहिली बात " **विचार जागृति** " की है। एक एक विचार मनमें सतत जागृत रहना चाहिये। विचार जागृति मनमें सतत होने के लिये एकही उपाय है और वह यह है कि **उस विचार के शब्द मोटे अक्षरोंमें आपके सामने सदा रहें**। वेदके उत्तम मंत्र, उपनिषदोंके वाक्य, शास्त्रोंके आदेश, सत्पुरुषोंके बोध, सुभाषित आदि मोटे और सुंदर अक्षरोंमें लिख कर यदि आप अपने घरकी दिवारों पर लगायेंगे, तो वारंवार उन भावोंका स्मरण आपके मनमें होगा, और आपके अंदर सुवि-

विचारोंकी योग्य जागृति हो जायगी। यह संभव नहीं कि, आपका मित्र वारंवार आपको जागृत करेगा, यह संभव नहीं कि आपकी मनः-प्रवृत्तिके योग्य वाक्य छपे छपाये आपको बाजारोंमें मिलेंगे। यदि मिले तो आप लेकर उनको लटकाईये। परंतु न मिले, तो आप को अपनी उन्नति करना अत्यावश्यक है, इसलिये आप स्वयं जितने हो सके उतने उत्तम वाक्य लिख कर अपने घरमें स्थान स्थानपर दिवारोंपर लटका दीजिये। यहां आपकी सुविधाके लिये थोडेसे वाक्य नीचे देता हूं—

(१) अहिंसा | मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः ॥ यजु. १२।३२॥

अपने शरीरसे किसीभी प्रजाको अथवा किसीभी प्राणिको दुःख न दो। शरीर, इंद्रिय, मन, बुद्धि, वाणी अथवा किसी प्रकारके इशारेसे किसी दूसरेको कष्ट न दो। यह अहिंसाकी भावना विचार में स्थिर रहे, यही भावना वाणीसे प्रकट हो, इसी भावनासे युक्त कर्म हों और इसी प्रकार अपना जीवन अहिंसा रूप बने। जिसके मन, वाणी और कर्म में पूर्ण अहिंसा बनी है और जिसका स्वभावही अहिंसा मय बन गया है; उसके साथ रहनेवाले सब अन्य प्राणी भी निर्वैर भावसे युक्त होते हैं।

(२) सत्य- सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥ ऋ. ९।७३।१

सत्यकी नौकायें सदाचारीको दुःखके पार ले जाती हैं। आग्रहसे सत्यका पालन करनेसे यश प्राप्त हो जाता है। सत्यसे देवत्व प्राप्त होता है। इसलिये असत्यको छोडकर सत्यका स्वीकार

दक्षतासे करना चाहिये । निश्चयसे अनृत छोडकर सत्यका पालन करना चाहिये । कितना भी प्रलोभन हो, असत्यसे कितना भी लाभ प्राप्त क्यों न होता हो, परंतु सत्य पर ही सदा स्थिर रहना चाहिये। सब जगत् सत्य नियमोंसे चल रहा है, सत्य परमेश्वरका उसको आधार है, सत्यके आश्रयसे सब साधुसंत श्रेष्ठ वंदनीय और यशस्वी बने हैं, सत्य पालन करनेसे मनुष्य निर्भय बन जाता है। इस प्रकार सत्यकी महिमा है ।

(३) अस्तेय—न स्तेयमद्मि ॥ अ. १४ । १ । ५७

मैं चोरी करके अपने भोग नहीं करता हूं । चोरीके धनसे अपने भोग बढाना महापाप है । चौर्य अत्यंत हीन प्रवृत्ति है । चोरी करके कोई भी बडा नहीं हुआ है । सब लोक चोरका धिक्कार करते हैं । इस लिये चोरी करके मैं कभी अपने आपको नीच नहीं बनाउंगा ।

(४) ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।
अ. ११ । ५ । १९

ब्रह्मचर्य पालन करके ही मृत्युको दूर किया जा सकता है । जो दीर्घजीवी हुए हैं, उन सबोंने ब्रह्मचर्यका पालन विशेष रीतिसे किया था । ब्रह्मचर्यका नाश होनेसे आयुय घट जाता है, मनुष्य निस्तेज होता है, उसकी स्मरणशक्ति और बुद्धि निकृष्ट होती है । पुरुषार्थ करनेका उत्साह ब्रह्मचर्य दृढ रखनेवालेके अंदरही होता है । वार्यका नाश करनेवाला सुस्त और हीन सा दिखाई देता है । इस लिये प्रयत्न करके मैं ब्रह्मचर्यका पालन अवश्य करूंगा ।

(५) अपरिग्रह—मा गृधः ॥ य. ४०।१

मत् ललचाओ । विषय भोगोंका लोभ कम करो । भोगोंमें फंसनेसे योगका जीवन नहीं व्यतीत हो सकता । विषयोंके अति सेवनसे अर्थात् भोगसे रोगका भय होता है । विषयोंका परिग्रह न करनेसे जो निर्लोभ वृत्ति हो जाती है, उसीको अपरिग्रह वृत्ति कहते हैं । विषयोंसे आनंद नहीं मिलता, परंतु अपनी आत्मिक शक्तिसे आनंदका अनुभव होता है, यह आत्मविश्वास इस भावनासे होता है ।

(६) स्वच्छता—शुद्धाःपूता भवत । ऋ. १०।१८।२

शुद्ध और पवित्र बन जाइये । अपनी शरीरकी शुद्धता, मनकी पवित्रता, इंद्रियोंकी निर्दोषता, बुद्धिकी शुद्धि, गृह की स्वच्छता, अपने स्थानकी शुद्धि, ग्रामकी निर्मलता, समाजकी पवित्रता, इस प्रकार सर्वत्र स्वच्छता होनी अत्यावश्यक है । स्वच्छतासेही निर्दोष जीवन हो सकता है । आयु, आरोग्य, प्रसन्नता आदिका मूल स्वच्छता और पवित्रता में है । अपनी सब प्रकारसे पवित्रता करनी चाहिये ।

(७) संतोष—अकामो धीरो अमृतः । अ. १०।८।४४

संतोषवृत्तिवाला धैर्ययुक्त और अमर होता है । लोभी वृत्तिसे मनुष्य भयभीत और क्षीण बनता है । लोभ को दूर करके निष्काम संतोष वृत्तिसे आनंद और धैर्य प्राप्त होता है । चेहरेपर सहज आनंदवृत्ति रहनेके लिये मनमें संतोष चाहिये । वासनाओंका क्षोभ जहां होगा, वहां मानसिक समता नहीं होगी; और समताके अभावमें आनंदभी नहीं होगा ।

(८) तप—अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते । ऋ. ९।८३।१

जिसने तप नहीं किया, उसको वह आनंद नहीं प्राप्त होता है। तप करनेसे सुख मिलता है। धर्मकार्य करनेके समय जो कष्ट होते हैं, उनको आनंदसे सहन करनेका नाम तप है। जितने महात्मा हुए हैं, उन सबने तप किया था, इसीलिये उनका सर्वत्र आदर होता है। तपके जीवनके विना न इस जगत् के कार्य में सिद्धि प्राप्त होती हैं, और न आध्यात्मिक उन्नति मिल सकती है। जो तप करता है, उसकी सर्वत्र पूजा होती है। जो अपने सत्यसिद्धांत प्रतिपादन करनेके कारण कष्ट सहन करता है, उसी का विजय होता है। इस-लिये दृढतासे तप का जीवन व्यतीत करना चाहिये।

(९) स्वाध्याय—स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

तै. उ. १।११।१

अपनी विद्याका अभ्यास तथा अपना ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। मैं कैसा था, कैसा हूं और ऐसाही चलता रहेगा तो आगे कैसी अवस्था होगी, इसका वारंवार विचार करना चाहिये। यह ज्ञान जैसा वैयक्तिक दृष्टिसे वैसाही सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टिसे प्राप्त करना चाहिये। ग्रंथ भी ऐसेही पढने चाहिये कि, जो उक्त ज्ञान देनेवाले हों।

(१०) ईश्वरभक्ति—इमे त इंद्र ते वयं। ऋ. १।५७।४
हे प्रभो! हम तेरे हैं। हे ईश्वर! हम सब आपकी भक्ति करनेवाले हैं। इस प्रकार परमेश्वरकी भक्तिके भाव व्यक्त करनेवाले वाक्य घरमें लटकाने चाहियें।

(११) शांति—शांतिरेव शांतिः, सा मा शांतिरेधि।

यजु० ३६। १७

जो सच्ची शांति है वही मुझे प्राप्त हो। जो सच्ची शांति है, उसकी स्थापना में करूंगा। व्यक्तिमें शांति रहे, समाज और राष्ट्रमें शांतता अबाधित रहे, संपूर्ण जगत् में सच्ची शांति रहे। इस प्रकारकी शांति स्थापन करनेमें मैं अपने आपका समर्पण करता हूं। सब श्रेष्ठ पुरुषोंने शांति स्थापनमें ही अपने आपको समर्पित किया था। सब मनुष्योंका अंतिम ध्येय सच्ची शांति प्राप्त करना ही है।

इसी प्रकार शुभ गुणोंके विषयमें बडे अच्छे उत्तेजना के वाक्य चुनकर घरमें दिवारोंपर लटकाने चाहिये। न्याय, नम्रता, सरलता, निष्कपटभाव, संयम, दमन, स्थिरता, व्यवस्था, उद्यमशीलता, धैर्य, मितव्यय, पराक्रम, यश, महत्व आदि शुभ गुणोंके विषयमें जागृति करनेवाले वाक्य चुनचुन कर लटकानेसे बडा लाभ होता है। जाने आनेके समय उन वाक्योंपर दृष्टि पडती है, और मनमें वही भाव खडा हो जाता है, इस प्रकार वारंवार होनेसे अंतःकरणमें संस्कार दृढ हो जाते हैं। यह साधारण घरका वायुमंडल बनानेके विषयमें हुआ।

इसी प्रकार अपने इष्टमित्र चुननेके समयमें भी दक्षता रखनी चाहिये। जो उक्त वायुमंडलका परिपोष करेंगे, ऐसे ही सज्जनोंके साथ मित्रता रखनी चाहिये। जो उक्त वायुमंडल बिगाड देंगे, उनको दूर रखना योग्य है।

इतना करनेपर भी अपने प्रयत्नकी आवश्यकता रहती ही है। यदि आप प्रयत्न करके उक्त शुभ गुण अपने अंतःकरणके अंदर स्थिर करनेका दृढ यत्न न करेंगे, तो बाहेरकी परिस्थिति कोई इष्ट परिणाम

आपके ऊपर कर नहीं सकती। इसलिये आपको स्वयं अपने सुधार के लिये कटिबद्ध होना आवश्यक है। यह कैसा किया जा सकता है? इसकी युक्ति यह है। पूर्व स्थानमें थोडेसे गुण लिखे हैं, उतने ही पर्याप्त नहीं हैं; इस लिये आप कल्पना कीजिये कि, किन किन उत्तम गुणोंसे " **उत्तम आदमी** " बनता है। आप अपने मनके अंदर ऐसे आदमीकी मूर्ति खडी कीजिये। उसके अंदर कौनसे गुण हैं, और कौनसे आपके अंदर नहीं हैं, और उतना अच्छा बननेके लिये अपने अंदर कितने गुण किस प्रमाणसे बढाने चाहिये। यह बात आप अपने मनसे ही कागजपर लिखिये।

जब गुणोंकी संख्या आप निश्चित करेंगे, तो उन गुणों में जो गुण सबसे सुगमतया प्राप्त हो सकता है, इसको अपने अभ्यास के लिये प्रथम रखिये; और जो सबसे कठिन होगा उसको सबके पश्चात् लिखकर बीचमें क्रमपूर्वक इतर गुण लिखिये। अब जो गुण आपके मतसे सबसे सुगम है, उसकी प्राप्तिका यत्न करना आपका पहिला कर्तव्य होगा। बडे अक्षरोंमें एक कागजपर उस गुण का नाम लिख कर अपने कमरेमें लगाइये, और उस गुणका परिपोष करनेवाले मंत्र, वाक्य और सुभाषित चुनकर उसके साथ रखिये। एक महिना भर एक " **गुणकी धारणा** " करनेका अभ्यास निश्चयके साथ कीजिये। और जहांतक हो सके वहांतक प्रयत्न करके उस मासमें अपने मनपर ऐसे संस्कार जमाइये कि जिससे वह गुण आपके मनमें स्थिर हो जाय, और आपका स्वभावही वैसा बन जाय। मान लीजिये कि " **शुद्धता स्वच्छता** " आदिके ऊपर आपको धारणा करनी है। क्योंकि यह सबसे सुगम है --

शुद्धता! स्वच्छता!! पवित्रता!!!
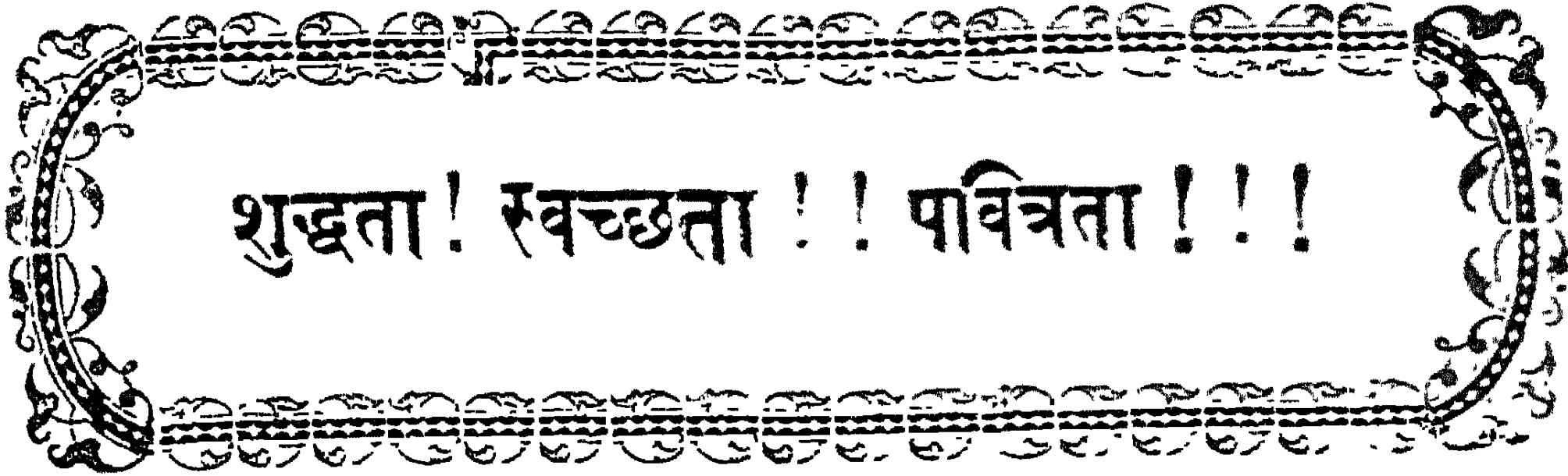
(१) शरीरकी स्वच्छता, (२) इंद्रियोंकी पवित्रता.
(३) कपडोंकी शुद्धता, (४) मनकी शुद्धता,
(५) विचारों की पवित्रता, (६) आत्माकी स्वच्छता.
(७) कमरे को निर्मलता, (८) घरकी शुद्धता.
(९) उद्यान की पवित्रता, (१०) ग्रामकी स्वच्छता. इ-

इस प्रकार आप सूचनायें लिखिये. तथा जहांसे आप स्वच्छताका प्रारंभ कर सकते हैं, वहांसे अमल करना शुरू कीजिये। "**शुद्धता पवित्रता और निर्मलता**" की धारणा आपने एक महिनेमें करनी है; इसलिये इसमें त्रुटि होनी उचित नहीं है। **आपने वैदिक धर्म आचरणमें लाना है और जनता को बताना है कि, वैदिक धर्मका सच्चा प्रचार आचरण से ही होता है।** इस लिये दिखावेके लिये प्रयत्न न कीजिये। यदि आप दिखावे के लिये करेंगे, तो उसका इष्ट परिणाम नहीं होगा; इसलिये आप अपना कर्तव्य समझकर अपने आचरण की पवित्रता करते जाइये। आप प्रयत्न करेंगे, तो एक महिनेके अंदर ही "**स्वच्छता**" के विषयमें आप आदर्श बन जांयगे, और लोग स्वयंकहने लगेंगे कि, '**देखो, यह कैसा था और अब कैसा बन गया है**" लोगोंके

ये शब्द सुनकर आप घमंड न कीजिये, परंतु अधिक दक्ष बनकर अपनी अधिक पवित्रता करते जाइये। इसका परिणाम और ही अधिक होगा। ध्यान रखिये कि, "**कर्तव्य करना आपका अधिकार है, परंतु फल का लोभ नहीं करना चाहिये।**", फलके लोभसे ही यदि कार्य करेंगे, तो गिरेंगे। इसलिये दूसरोंकी निंदा अथवा स्तुतिकी पर्वाह न करते हुए आप आपना कर्तव्य पालन उक्त प्रकार करते जाइये; अपने अंदर श्रेष्ठ गुणोंका धारण कीजिये, और वैदिक जीवन का अमल कीजिये। इसका परिणाम हमेशाही अच्छा होगा।

जिस गुणपर "**धारणा**" करनी है, उस गुण का वाचक शब्द, उस गुणका स्मरण देनेवाले मंत्र, उपदेश और वाक्य, उस गुणका विकास जिस विभूतिमें हुआ होगा, उसका चित्र अथवा नाम सामने दिवार पर लटका रहनेसे, मनके अंदर उन गुणोंकी जागृति हो जाती है; इसलिये ऐसा लिखकर रहनेसे धारणाकी सिद्धि प्राप्त होनेमें सहायता हो जाती है। देशभक्ति के लिये श्री शिवाजी छत्रपति और राणा प्रतापसिंह; धर्मभक्ति के लिये सिक्ख गुरु; ब्रह्मचर्य के लिये भीष्मपितामह; सत्यके लिये राजा हरिश्चंद्र; ईश्वरभक्ति के लिये प्रल्हाद आदि अनेक पुरुष हैं कि, जो उक्त गुणोंकी सूचना दे रहे हैं। इनके साथ सूचक मंत्र, अच्छे वाक्य, बोधवचन, संतोंके उपदेश आदि रहनेसे मन के ऊपर अपूर्व परिणाम हो जाता है। आप इस प्रकार करके देखिये, आपको आठ दस दिनों के अंदर ही अनुभव आजायगा और इसकी उपयोगिता के विषयमें कोई शंका ही नहीं रहेगी।

ऊत्साह, महत्वाकांक्षा और जोश मनुष्यके अंदर विलक्षण कार्य करते हैं। उत्साह–हीन मनुष्य की उन्नति होना असंभव है। इसलिये आप उत्साह से मनमें विश्वास रखिये कि मैं इस गुणकी धारणा इस महिनेमें अवश्यही करुंगा, और विघ्नोंकी पर्वाह न करते हुए मैं अपना निश्चय स्थिर रखूंगा, और सिद्ध करके बताउंगा। जिस गुणके ऊपर प्रथम धारणा करनी होगी, वह गुण सबसे सुगम चुन लीजिये, जिससे आपको यश सत्वर प्राप्त होगा, और आप द्विगुणित उत्साहसे आगेके गुणोंकी धारणा कर सकेंगे।

कई मनुष्य धनके लिये अपने गुण बढाते हैं, कई दूसरोंका केवल अनुकरण करना चाहते हैं, कई स्पर्धासे आगे बढते रहते हैं, कई दूसरे लालचोंके लिये यत्न करते रहते हैं। धन प्राप्तिके लिये किसीने अपने अंदर सद्गुणोंकी वृद्धि की तो भी अच्छा है; सज्जनोंका अनुकरण करनेके लिये कोई मनुष्य अच्छा बना तोभी कोई बुरा नहीं है;उसी प्रकार स्पर्धाके कारण कोई उन्नत हुआ तोभी बहुत प्रशंसनीय है। तथापि यदि आप अपने अंदर "**मनुष्यत्व**" की वृद्धि करनेके लिये ही केवल श्रेष्ठ गुणोंकी धारणा करके उनकी अभिवृद्धि करेंगे, और इस प्रकार सद्गुणोंसे मंडित होकर जनताकी भलाई करनेके सार्वजनिक कार्यमें अपने आपको समर्पित करेंगे, तो आपका यश चिरकाल रहेगा। परंतु यदि कोई इस प्रकार निष्काम भावसे अपनी उन्नति नहीं कर सकता, तो वह पूर्वोक्त रीतिसे फलकी इच्छा धारण करके सकाम भावसे उन्नतिका कार्य करे। पहिली

सकाम भावना, अपनी उन्नति हो जानेपर, उच्च निष्काम भावनामें ही परिणत हो सकती है।

साधारण मनुष्योंको प्रारंभमें ऐसा करना उचित है कि, अपने आपको अपनी विभूतिके स्थानमें ही मानसिक भूमिकामें क्षणमात्र रखें। यदि आपको सत्यका आग्रहसे पालन करना है, तो हरिश्चंद्र के स्थानमें अपने आपको रखिये और समझ लीजिये कि इतने कठिन प्रसंग आनेपरभी आपने सत्य छोडा नहीं। अथवा आजकलकी आपत्तियां आपपर आरहीं हैं तथापि आपने सत्य पकड रखा है और छोडा नहीं। ऐसी कल्पनामय दृढता अपने मनके अंदर ही अनुभव कीजिये। इससे यह होगा कि, कल्पनामें ही आप अपने आपको स्वयं कठिन प्रसंगोंमें रखेंगे और परीक्षाका समय आनेपर भी न गिरनेका अनुभव करेंगे। उससे थोडासा बल और उत्साह प्राप्त हो जाता है। यद्यपि इससे कठिन प्रसंगमें बहुत लाभ होनेकी आशा नहीं है, तथापि मनके लिये कुछ न कुछ सफलताकी आशा हो जाती है। और काल्पनिक प्रलोभन काल्पनिक आत्मिक बलसे दूर करनेमें भी कुछ बल मिल जाता है। मनका दृढ निश्चय करनेके लिये यह एक अत्यंत अल्पसा साधन है।

प्रत्येक चार दिनमें अथवा आठवें दिन आप अपनी परीक्षा कर सकते हैं कि, धारणाका गुण अपने अंदर किस प्रमाणसे बसने लगा है। यदि उक्त अवधिमें कोई परीक्षाका समय आया होगा, तो आप विचार कीजिये कि, आपका वर्ताव उस समय कैसा हुआ, और उस

प्रकारका समय फिर आनेपर आपको किस बातमें अधिक सावधानता रखनी चाहिये। इस प्रकार आत्मपरीक्षा करने से आपको बडा ही लाभ होगा।

अंतमें इतना ही कहना है कि, संपूर्ण बलोंमें "**निश्चय का बल**" सबसे अधिक है। इसलिये यदि आप अपने जीवनमें "**वैदिक धर्म**" को ढालना चाहते हैं, अथवा यौं कहिये कि, अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि सचमुच प्राप्त करना चाहते हैं, तो **आपको मन का पक्का निश्चय करना चाहिये**। यदि आप मनका पक्का निश्चय नहीं करेंगे तो संपूर्ण जगत् भी आपका सहायक हुआ, तथापि आपकी उन्नति नहीं होगी। परंतु संपूर्ण जगत आपका विरोधी होनेपर भी यदि आपका दृढ निश्चय है, तो आपका ही विजय होगा। इसलिये सब कुछ आपकी उन्नति आपके दृढ निश्चयपर अवलंबित है, इस बातको आप न भूलिये।

तात्पर्य दृढ निश्चयसे आप प्रयत्न करेंगे, तो पूर्वोक्त प्रकार एक एक सद्गुणको अपने अंदर धारण करके बढा सकते हैं। और साल दो सालमें ही आप ऐसे बन सकते हैं कि, जिसको अनुकरणीय समझा जा सकता है। यदि थोडेसे दृढ निश्चयसे ऐसा होता है, तो फिर आप क्यों नहीं प्रयत्न करते? कृपया आजही प्रारंभ कीजिये और देखिये तो सही कि दो चार महिनोंमें क्या होता है?

विषयसूची।

[१] देवता--परिचय--ग्रंथ--माला।

१ रुद्रदेवताका परिचय । मू. ॥) आठ आने ।
२ ऋग्वेदमें रुद्र देवता । मू. ॥=) दस आने ।
३ ३३ देवताओंका विचार । मू. =) तीन आने।
४ देवता- विचार । मू. =) तीन आने ।

(४) ब्राह्मण बोध माला ।

१ शतपथबोधामृत । . ।)चार आने

मंत्री--स्वाध्यायमंडल,औंध.[जि. सातारा.]
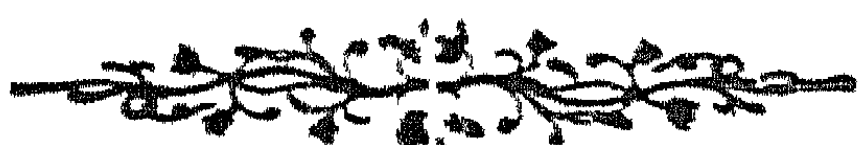
" योग की आरोग्य वर्धक व्यायाम पद्धति "

अनेक वर्षों के अनुभवसे यह बात निश्चित हो चुकी है कि शरीर स्वास्थ्यके लिये आसनोंका आरोग्य वर्धक व्यायाम ही अत्यंत सुगम और निश्चित उपाय है।

इस समय तक बाल, तरुण, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, रोगी तथा अशक्त मनुष्यों को भी इस योग की आरोग्य वर्धक व्यायाम पद्धति से बहुत ही लाभ हुआ है।

अशक्त मनुष्य इससे अपना स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं और नीरोग मनुष्य अपना स्वास्थ्य स्थिर रख सकते हैं।

इस पद्धतिका संपूर्ण स्पष्टीकरण इस पुस्तक में है। मूल्य केवल २) रु. है। शीघ्र मंगवाइये।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशकः—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
भारत मुद्रणालय, स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा.)